

हमें अनुक्रियाशील स्कूलों की आवश्यकता क्यों है !

सुबीर शुक्ला

‘नहीं, सर, वे जवाब नहीं देंगे, सर।’

यह 1990 के दशक की बात है। मैं केरल में कामकाजी बच्चों के एक गैर-औपचारिक शिक्षा केन्द्र (उन दिनों में ये हुआ करते थे) में था। 8-12 साल तक के बच्चों ने पूरे दिन काम किया था और रात को इस केन्द्र में आए थे। उनके अध्यापक उन्हें बुनियादी साक्षरता कौशल सिखाने की कोशिश कर रहे थे। पर उन्हें यह काम मुश्किल लग रहा था क्योंकि बच्चे थके हुए थे और बिल्कुल रुचि नहीं दिखा रहे थे। मैंने उपयोग में लाए जाने वाले प्राइमर को देखा - ऐसा लगता था कि उसका बच्चों के जीवन के साथ कोई वास्ता नहीं है! इस बिन्दु पर आकर जब मैंने पूछा कि क्या हम किसी दुभाषिण की मदद से बच्चों के साथ बातचीत कर सकते हैं और तब मुझे जवाब मिला कि वे कोई जवाब नहीं देंगे।

खैर, हम आगे बढ़े। मैंने बच्चों से पूछा कि क्या वे उन सभी औजारों के नाम बता सकते हैं जिनका उपयोग उन्होंने पूरे दिन में किया हो। शुरुआत में तो वे थोड़ा झिझके, लेकिन फिर जल्द ही उन्होंने इतनी तेजी से औजारों के नामों की बौछार कर दी कि अध्यापक के लिए उन्हें ब्लैकबोर्ड पर लिखना मुश्किल हो रहा था। फिर हमने चर्चा की कि प्रत्येक औजार का उपयोग किस काम के लिए किया जाता था, उसका विकल्प क्या था आदि। जैसे-जैसे बोर्ड बच्चों द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले शब्दों से भरने लगा, वह ‘शिक्षार्थी-जनित पाठ्य’ बन गया, जिसमें पर्याप्त पुनरावृत्ति और पैटर्न थे और जिनका उपयोग हम पठन सिखाने के लिए सामग्री के रूप में कर सके।

बरसों बाद, झारखण्ड के एक दूरदराज गाँव में एक लड़के से बातचीत हुई जिसने स्कूल में देर से दाखिला लिया था (वह बकरियाँ चराया करता था)। मैंने उससे पूछा कि सारी बकरियाँ तो एक जैसी दिखती हैं तो वह अपनी बकरियों को कैसे पहचानता है। उसने मुझे आश्चर्य से देखा, ‘क्यों? जब आप अपने बच्चों को देखते हैं तो क्या उन्हें नहीं पहचान पाते?’ और फिर हमने बकरियों के चराने की पेचीदगियों पर चर्चा की जैसे - झुण्ड को एक साथ रखना, विभिन्न मौसमों में झुण्ड को वापस लाने के बारे में जानना और यदि कोई बकरी अस्वस्थ हो तो जड़ी-बूटियों का उपयोग करना आदि। स्कूल में देर से दाखिला लेने के कारण इस लड़के को ‘विशेष प्रशिक्षण’ दिया जा रहा था; अन्य विद्यार्थी उसके साथ अधिक बातचीत नहीं

करते थे और शिक्षक को यकीन नहीं था कि वह कभी कुछ सीख भी पाएगा या नहीं, क्योंकि वह कक्षा में कभी बात नहीं करता था। फिर भी, यहाँ वह अपने क्षेत्र का विशेषज्ञ था और उसे अपने सहपाठियों की प्रशंसा मिल रही थी।

अभी हाल ही में, मुम्बई में धारावी की झुग्गी-बस्ती के स्कूल में, चौथी कक्षा के कथित रूप से ‘पिछड़े’ विद्यार्थियों के साथ बातचीत करते हुए मैंने उनसे पूछा कि उन्होंने पूरे दिन क्या किया और क्या खाया। मुझे पता चला कि उनमें से कइयों ने बिरयानी का आनन्द लिया। यह पूछने पर कि क्या वे इसे बनाना जानते हैं, करीब पन्द्रह बच्चों ने हाथ उठाया। मैंने एक लड़के से कहा कि वह कक्षा में बिरयानी बनाने की विधि बताए। उसने बताना शुरू किया लेकिन बीच में ही उसे एक लड़की ने रोक दिया और कहा कि उसका तरीका ‘सही’ नहीं था। उन दोनों के बीच बिरयानी बनाने की बारीकियों पर बखूबी बहस हुई!

सभी जगहों की तरह यहाँ पर भी शिक्षक बच्चों की मुखरता से काफ़ी आश्चर्यचकित थे क्योंकि उन्होंने कभी इन बच्चों को बोलते हुए नहीं सुना था। कुछ मिनटों बाद बच्चों ने खुलासा किया कि एक स्थानीय बिरयानीवाला था, जो उन्हें पसन्द था। तब मैंने उनसे पूछा कि उन्हें क्या लगता है कि वह हर दिन कितना मुनाफ़ा कमाता होगा। इस पर बच्चों ने तुरन्त उसके खर्चों और आय की विस्तार से गणना करके अपने शिक्षकों को चौंका दिया। ‘लेकिन, वे गणित में हमेशा से इतने कमजोर रहे हैं और बिल्कुल रुचि नहीं दिखाते हैं!’ उनके शिक्षकों का कहना था।

बदले हुए परिदृश्य में शिक्षण

मुझे इस बात पर हमेशा आश्चर्य होता है जब शिक्षकों और अन्य वयस्कों को यह पता चलता है कि जो बच्चे कथित रूप से मन्द हैं वे वैसे बिल्कुल नहीं हैं तो वे कितने अचम्भित हो जाते हैं! किसी न किसी कारण से हम उस समृद्ध ज्ञान को देखने में असमर्थ हैं जो वे स्कूल के बाहर के अपने जीवन से प्राप्त करते हैं। उन्हें अक्सर अपने पर्यावरण की गहरी समझ होती है, उदाहरण के लिए आदिवासी बच्चों; कचरा चुनने वालों की सामग्री; खाना बनाने वालों; बच्चे का ध्यान रखने वालों; और ऐसे ही कई अन्य आयामों के बारे में सोचिए जिन्हें ‘ज्ञान’ के रूप में नहीं देखा जाता और हमारी पाठ्यपुस्तकों या कक्षा की

प्रक्रियाओं में उन्हें शामिल नहीं किया जाता।

वास्तव में इसमें शिक्षकों की गलती नहीं है क्योंकि उन्होंने किसी और समय और सन्दर्भ में बनाई गई व्यवस्था में क्रम रखा है। जब 1980 के दशक में मैंने शिक्षा के क्षेत्र में काम करना शुरू किया तब केवल 40% बच्चे स्कूल में थे और पाँचवीं कक्षा पूरी करने से पहले बहुत से बच्चे स्कूल छोड़ देते थे। व्यवस्था भी उन लोगों के अनुसार तैयार की गई थी जो स्कूल का खर्चा उठा सकते थे, हर दिन स्कूल में उपस्थित हो सकते थे, जिन्हें घर पर समर्थन मिलता था और जो स्कूल की भाषा का प्रयोग करने में सहज थे। सिर्फ़ दो दशक बाद, 90% से अधिक बच्चे स्कूल में आ गए। इसका मतलब था कि अब स्कूल में अधिकांश बच्चे ऐसे समूहों के थे जो पारम्परिक रूप से कभी स्कूल नहीं गए थे। वे पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी नहीं थे – चूँकि सभी पीढ़ियों ने काफ़ी कुछ सीखा हुआ था – वे बस पहली पीढ़ी के स्कूल जाने वाले थे।

बच्चों को स्कूल में लाने में हमारी सफलता का एक बड़ा परिणाम यह हुआ है कि विद्यार्थी का प्रोफ़ाइल बदल गया है। अधिकांश सरकारी स्कूलों और कम शुल्क वाले निजी स्कूलों में अब हमारे पास ऐसे विद्यार्थी हैं जिनके पास वह मध्यमवर्गीय पृष्ठभूमि या सांस्कृतिक पूँजी नहीं है जिन्हें हमारी पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकें और प्रक्रियाएँ मान कर चलती हैं कि उनके पास होगी। जो लोग गरीब हैं, उनके लिए कई कारणों से स्कूल में हर दिन उपस्थित होना मुश्किल हो सकता है। न ही उनके परिवार में ऐसे वयस्क होंगे जो बच्चे की पढ़ाई में उसकी मदद कर सकें। हो सकता है कि एक बड़ी संख्या में बच्चे स्कूल की भाषा को अच्छी तरह से न जानते हों। उदाहरण के लिए दिल्ली की किसी झुग्गी-बस्ती वाले स्कूल में प्रवासन और शहरीकरण के कारण एक कक्षा में आसानी से दस से अधिक भाषाएँ बोलने वाले बच्चे हो सकते हैं। सम्भव है कि इन कक्षाओं में पंजाबी और ओड़िया बोलने वाले विद्यार्थी एक-दूसरे की बगल में बैठे हों। ऐसे में आप उस कक्षा में कैसे पढ़ाएँगे?

‘विफल होने के लिए डिज़ाइन की गई’ स्थिति

अपने देश की विविधता के चलते हमारे विद्यार्थियों में हमेशा भिन्नता रही है। जैसे-जैसे हम सफलतापूर्वक सार्वभौमिकता की ओर बढ़े, यह विविधता ‘अति-विविधता’ में बदल गई - फिर भी विद्यार्थियों के अधिगम के प्रति हमारा दृष्टिकोण कमोबेश वैसा ही रहा जैसा पहले हुआ करता था। हम अभी भी अपने शिक्षकों से यही अपेक्षा करते हैं कि वे सभी बच्चों को एक ही समय में एक ही विधि से एक ही बात सिखाएँ और एक ही परिणाम प्राप्त करें। यह एक ऐसा विचार है जो ‘विफल होने के लिए डिज़ाइन’ किया गया है क्योंकि यह इस बात को

सुनिश्चित करता है कि अधिकांश बच्चे, जो अन्यथा तीव्रबुद्धि और सक्षम हैं, वे किसी न किसी कारण से अधिगम की प्रक्रिया से बाहर रह जाएँ। ‘सभी के लिए एक-जैसी व्यवस्था’ बनाकर हमने ‘अधिकतर को अधिगम प्रक्रिया से बाहर’ कर देने वाली स्थिति बना दी है जिसमें अधिकांश बच्चे (और उनके परिवार) व्यवस्था की बुनियादी अपेक्षाओं को पूरा नहीं कर पाते। इस व्यवस्था की ‘बाहर रखने’ की प्रकृति के परिणामस्वरूप कई बातें सामने आती हैं जैसे शिक्षकों के सामने आने वाली कठिनाइयाँ, अधिगम के निम्न स्तर और प्रेरणा की कमी।

अनुक्रियाशील दृष्टिकोण अपनाना

‘विफल होने के लिए डिज़ाइन’ की गई इस स्थिति निपटने के लिए हम क्या कर सकते हैं? शुरुआत करने के लिए, खासकर कि यदि आप एक शिक्षक हैं तो, बच्चों के ज्ञान कोष से शुरू करें। यह वह ज्ञान है जो बच्चे कक्षा के बाहर की अपनी दुनिया से अपने साथ लाते हैं। हर बच्चा किसी न किसी चीज़ का विशेषज्ञ होता है। उदाहरण के लिए बौद्धिक अक्षमता वाला बच्चा आपको अपनी इस विशेषता से आश्चर्यचकित कर सकता है कि वह अपनी देखभाल करने वाले के मूड को कितनी अच्छी तरह जानता है।

बच्चे की इस विशेषज्ञता और ज्ञान को हम कैसे बाहर लाएँ, उसे साझा करें, उस पर चर्चा करें और देखें कि हम जो कुछ सिखाने की कोशिश कर रहे हैं उससे इस ज्ञान को कैसे जोड़ा जाए? इसका मतलब यह हुआ कि बच्चे आपकी कक्षा में बोलें। इसलिए वास्तव में पहली अपेक्षा यह सुनिश्चित करना है कि हम एक जीवन्त कक्षा चलाएँ जिसमें बच्चे सक्रिय रूप से भाग लेने में संकोच न करें। यहाँ हमारा गुप्त हथियार है मुस्कराना, बार-बार मुस्कराना, और यह बहुत कारगर है! अगला चरण है, जैसा कि पहले भी बताया गया है, बच्चों के अनुभवों के बारे में प्रश्न पूछना और फिर आप उनके उत्तरों को उस पाठ के साथ जोड़ने के तरीके खोजें जिसे आप पढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं। यह विधि कई बार काम करेगी (लेकिन हमेशा नहीं)। लेकिन यदि एक बार आपको सफलता मिल गई यानि बच्चे सीखने की प्रक्रिया में लग गए तो आप बहुत तेजी से आगे बढ़ सकते हैं और फिर आप उन तरीकों का इस्तेमाल कर सकते हैं जिन्हें आप सामान्यतः काम में लाते हैं।

बेशक, शिक्षक हमेशा निर्धारित समय के भीतर ‘पाठ्यक्रम पूरा करने’ या ‘पाठ्यपुस्तक के पाठों को कवर करने’ के दबाव में रहते हैं। हो सकता है कि उनके पास ऐसी पाठ्यपुस्तकें हों जो नीरस हैं या उनमें जीवन्त जुड़ाव की सम्भावनाओं की कमी है या जो बच्चों के जीवन से बिल्कुल भी सम्बन्धित नहीं हैं। ऐसी स्थितियों में भी यह सम्भव है कि कक्षा सक्रिय और व्यस्त हो जिसमें प्रत्येक बच्चे को शामिल किया जा सके।

मिसाल के तौर पर खरगोश और कछुए की दौड़ की कहानी ले लीजिए। बच्चों से कहा जा सकता है कि वे खरगोश के लिए एक सात्वना कार्ड बनाएँ या वे हमें खरगोश के उस सपने के बारे में बताएँ जो दौड़ के दौरान सोते समय उसने देखा या श्रीमान कछुए की विजय पर उसके लिए एक प्रेस-साक्षात्कार का आयोजन करें। सभी शिक्षक-प्रशिक्षण कार्यक्रम किसी न किसी रूप में *गतिविधि-आधारित या रचनावादी शिक्षणशास्त्र* का समर्थन करते हैं, इसलिए कोई भी शिक्षक जो बच्चों को चुनौतीपूर्ण कार्यों में भाग दिलाने, उस पर चिन्तन करवाने या जो उन्होंने नई स्थितियों में सीखा है उसे लागू करवाने का प्रयास कर रहा है तो वह निश्चय ही वही कर रहा होगा जो उससे अपेक्षित है।

ऐसी प्रक्रिया में हम अपने बच्चों की विभिन्न आवश्यकताओं को कैसे सम्बोधित कर सकते हैं? यह सम्भव है जब आप हर बार एक ऐसा कार्य रचें जिस पर कई बच्चे अपने आप काम कर सकें। उदाहरण के लिए, आप बच्चों से कह सकते हैं कि वे अभी-अभी पढ़ाई/सुनाई गई कहानी के आधार पर एक ड्रॉइंग/रोल प्ले बनाएँ या कक्षा का एक नक्शा बनाएँ, या यह हिसाब लगाएँ कि प्रति बच्चे के लिए मध्याह्न भोजन की लागत कितनी है। इससे आपको कक्षा के दौरान 10-15 मिनट का समय मिल सकता है, जब आप उन बच्चों के साथ काम कर सकते हैं जो किसी कारण से दूसरे बच्चों से पीछे हैं। यह उन बच्चों पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने के अवसर प्रदान करता है जिन्हें अधिक समय और समर्थन की आवश्यकता होती है। इस प्रकार कक्षा में समता का अर्थ निकलता है - 'प्रत्येक बच्चे को उसकी आवश्यकता के अनुसार' शिक्षक का समर्थन, अवसर और शिक्षक का समय मिले। यह पूरी कक्षा को सामान्य तरीके से पढ़ाने और बाद में 'उपचारात्मक' शिक्षण करने से कहीं बेहतर है।

लेकिन आप कह सकते हैं कि हमें यह सब करने की स्वतंत्रता नहीं है। यह एक ऐसा दिलचस्प बिन्दु है जिस पर सोचा जाना चाहिए - पता नहीं क्यों, हम सभी खराब तरीके से पढ़ाने और खराब परिणाम प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र हैं, लेकिन हम अपनी

प्रक्रियाओं को बेहतर बनाने की कोशिश करने के लिए स्वतंत्र नहीं हैं! कोशिश कीजिए तो सही, देखें क्या होता है और फिर उसके आधार पर निर्णय लीजिए।

अनुक्रियाशील होना

इस सबका मतलब यह नहीं है कि समाधान केवल शिक्षकों के पास हैं। इसके विपरीत, हमें अपनी ज़मीनी वास्तविकताओं की रोशनी में और समसामयिक, साक्ष्य-आधारित सोच के आधार पर अपनी मूल शैक्षिक प्रक्रियाओं को सावधानीपूर्वक पुनः डिज़ाइन करके शिक्षकों के प्रयासों को मज़बूत करने की आवश्यकता है। अर्थात् हमें इन बातों की पुनः जाँच करनी होगी : पाठ्यक्रम को विषय-सामग्री से मूल क्षमताओं की ओर मोड़ना; पाठ्यपुस्तकों को जानकारी के स्रोतों के स्थान पर सीखने की प्रक्रियाओं को सक्रिय करने वाली बनाना; आकलन को भयोत्पादक और सही व गलत के खाँचे में रखने वाली प्रक्रिया के स्थान पर एक ऐसा शैक्षणिक उपकरण बनाना जो बच्चों को अपनी प्रगति की ज़िम्मेदारी लेने के लिए भी सशक्त बनाए; अपने शिक्षक पेशेवर विकास को पदानुक्रमित और निर्देश-आधारित के स्थान पर ऐसा रूप देना जो उन शिक्षकों के साथ समर्थकारी भागीदारी पर आधारित हो, जहाँ शिक्षकों के साथ संयुक्त रूप से लक्ष्य निर्धारित किए जाएँ और फिर उन्हें प्राप्त करने में उनकी सहायता की जाए।

इन बदलावों की ज़रूरत इसलिए है क्योंकि बच्चों को स्कूल के साथ समायोजन नहीं करना है बल्कि स्कूल को बच्चों के अनुकूल बनना होगा। ऐसा विद्यालय एक 'अनुक्रियाशील' विद्यालय होगा। मैं 'समावेशी' शब्द का उपयोग नहीं कर रहा क्योंकि इसका मतलब यह निकलता है कि हमने आपको शामिल किया है - इसमें कुछ हद तक एहसान करने वाली भावना आ जाती है जबकि वास्तव में यह बच्चे का अधिकार है और हम केवल कर्तव्यपालक हैं। इसलिए प्रत्येक बच्चे के सीखने के अनुभव को सन्तोषप्रद बनाने के लिए, जहाँ उसकी छिपी क्षमताओं को विकसित किया जा सके, शायद सबसे बड़ा बदलाव जिसकी ज़रूरत है वह है शिक्षा को देखने के हमारे अपने नज़रिए में बदलाव।



सुबीर शुक्ला ग्रुप इनस के साथ हैं और भारत और एशिया तथा अफ्रीका के अन्य देशों में हाशिए के बच्चों की ज़रूरतों पर ध्यान देते हुए शिक्षा व्यवस्था की गुणवत्ता में सुधार पर काम कर रहे हैं। वे मुख्य सलाहकार, डीपीईपी (1995-98) और एमएचआरडी के शैक्षिक गुणवत्ता सुधार सलाहकार (2009-11) रह चुके हैं। उन्होंने आरटीई-2009 के क्वालिटी फ्रेमवर्क के विकास का नेतृत्व किया। वे नीति आयोग द्वारा स्कूली शिक्षा-2035 के लिए भारत के विज्ञान को विकसित करने के लिए बनाई गई विशेषज्ञों की टीम में भी हैं। सुबीर, मनन बुक्स के माध्यम से बच्चों के लिए लिखते हैं और बच्चों के लिए एक बुनियादी शिक्षण पत्रिका, *चहक* निकालते हैं। उन्होंने हाल ही में चाइल्ड डेवलपमेंट एण्ड एजूकेशन इन दी ट्वेंटी-फर्स्ट सेंचुरी, स्प्रिंगर : सिंगापुर (अक्टूबर 2019) का सह-लेखन किया। उनसे subirshukla@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है। अनुवाद : नलिनी रावल